मूलाचार : एक परिचय

डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'

'मूलाचार' दिगम्बर परम्परा का आचार-ग्रन्थ है। डॉ. सागरमलजी ने इसे विभिन्न आधारों पर यापनीय सम्प्रदाय का ग्रन्थ सिद्ध किया है (द्रष्टव्य-- डॉ. सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ का आगमखण्ड)। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,वाराणसी में जैनदर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ. फूलचन्द्र जी जैन 'प्रेमी' ने मूलाचार पर शोधकार्य किया है, उन्होंने इस ग्रन्थ का भाषावचनिका के साथ संपादन भी किया है। प्रस्तुत आलेख उनके सम्पादित ग्रन्थ के सम्पादकीय में से संकलित है। **--सम्पादक**

मूलाचार श्रमणाचार विषयक एक प्राचीन और अनुपम कृति है। शौरसेनी प्राकृत भाषा में रचित इस बहुमूल्य ग्रन्थ के यशस्वी रचयिता आचार्य वट्टकेर हैं। दिगम्बर जैन परम्परा में आचारांग के रूप में प्रसिद्ध यह श्रमणाचार विषयक मौलिक, स्वतन्त्र, प्रामाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ २ -३ शती के आसपास की रचना है। यद्यपि अन्य कुछ प्रमुख आचार्यों की तरह आचार्य वट्टकेर के विषय में भी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है, किन्तु उनकी अनमोल कृति ''मूलाचार'' के अध्ययन से ही आचार्य वट्टकेर का बहुश्रुत सम्पन्न व्यक्तित्व, उत्कृष्ट चारित्रधारी आचार्यवर्य के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। दक्षिण भारत में बेट्टकेरी स्थान के निवासी वट्टकेर दिगम्बर परम्परा में मूलसंघ के प्रमुख आचार्य थे। इन्होंने मुनिधर्म की प्रतिष्ठित परम्परा को दीर्घकाल तक यशस्वी और उत्कृष्ट रूप में चलते रहने और मुनि-दीक्षा धारण के मूल उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मूलाचार ग्रन्थ की रचना की, जिसमें श्रमणनिर्ग्रन्थों की आचार संहिता का सुव्यवस्थित, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन किया है।

विषय परिचय

मूलाचार में बारह अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार के प्रतिपाद्य विषयों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

1. मूलगुणाधिकार-- इसमें छत्तीस गाथाएँ हैं। सर्वप्रथम मंगलाचरण पूर्वक विषय प्रतिपादन की घोषणा की गई है तथा श्रमणों के अट्ठाईस मूलगुणों का कथन किया गया है। तदनन्तर पाँच महाव्रत, पाँच समिति,पंचेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक, लोच, अचेलकत्व, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितभोजन और एकभक्त-- इन अट्ठाईस मूलगुणों की सारभूत परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अचेलकत्व मूलगुण के अन्तर्गत शरीर ढकने के लिए वस्त्र, अजिन (चमड़ा), वल्कल, तृण, पत्ते, आभूषण आदि के धारण का निषेध करके निर्ग्रन्थ (नग्न) वेश धारण करने को अचेलकत्व कहा है। मूलगुणों के पालन से मिलने वाले मोक्षफल के कथन के बाद अधिकार की समाप्ति की गयी है। का आचार-ग्रन्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. बृहत्प्रत्याख्यान—संस्तरस्तव अधिकार-- इसमें श्रमण को सभी पापों का त्यागकर मृत्यु के समय दर्शन आदि चार आराधनाओं में स्थिर रहने, क्षुधातृषा आदि परीषहों को समताभाव से सहने तथा निष्कषाय होकर प्राण त्याग करने का उपदेश है। प्रत्याख्यान विधि बताते हुए प्रत्याख्यान करने वाले के मुख से कहलाता गया है कि जो कुछ मेरी पापक्रिया है उस सबका मन, वचन, काय से त्याग करता हूँ और समताभाव रूप निर्विकल्प एवं निर्दोष सामायिक करता हूँ। सब तृष्णाओं को छोड़कर मैं समाधिभाव अंगीकार करता हूँ। सब जीवों के प्रति मेरा क्षमाभाव है तथा जीव मेरे ऊपर क्षमाभाव करें। मेरा सब प्राणियों पर मैत्री भाव है, किसी से भी मेरा वैर नहीं है। इसके अतिरिक्त चार संज्ञाओं, तैंतीस आशातनाओं, श्रमण की मनोभावनाओं के वर्णन के साथ-साथ मरण के भेद यथा मरण-समय णमोकार मंत्र के चिन्तन आदि करने का भी प्रतिपादन किया गया है।

3. संक्षेपप्रत्याख्यानाधिकार— इस अधिकार में व्याघ्रादि-जन्य आकस्मिक मृत्यु के उपस्थित होने पर पांच पापों के त्यागपूर्वक सामायिक समाधि धारण करके सर्वआहार, कषाय और ममत्व भाव के त्यागपूर्वक शरीर त्याग की प्रेरणा दी है। प्रत्याख्यान, आराधनाफल, पंडितमरण, समाधिमरण तथा जन्म एवं मृत्यु का भय आदि विषयों का वर्णन करके अन्त में दस प्रकार के मुण्डों के उल्लेखपूर्वक अधिकार की समाप्ति की गयी है।

4. समाचाराधिकार— इसमें विविध समाचार का अच्छा विवेचन है। समाचार शब्द के चार अर्थ बताये हैं रागद्वेष से रहित समता का भाव, अतिचाररहित मूलगुणों का अनुष्ठान, समस्त श्रमणों का समान तथा हिंसा रहित आचरण एवं सभी क्षेत्रों में हानि—लाभ रहित कायोत्सर्गादि के परिणाम रूप आचरण। उच्च ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त शिष्य-श्रमण को अपने गण से दूसरे गण एवं उसके आचार्य के पास किस विधि से जाना चाहिये इसका अच्छा वर्णन करके एकाकी एवं स्वच्छन्द विहार की सम्भाव्य हानियों का कथन तथा निषेध किया है। आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर और गणधर ये पांच आधार जहां न हों वहां रहना उचित नहीं है। इसी प्रसंग में आचार्य के गुणों का भी कथन किया है। इस अधिकार का महत्त्वपूर्ण अंश परगण से स्वगण में आगन्तुक श्रमणों का किस प्रकार स्वागत, उनकी परीक्षा तथा उनका सहयोग किया जाता है इन सबका बहुत ही स्पष्ट और सुन्दर चित्रण है। आर्यिकाओं का संक्षिप्त आचार, श्रमण और आर्यिकाओं के पारस्परिक संबंधों तथा आर्यिका को दीक्षा, उपदेश करने वाले अनेक गुण-धर्मों से युक्त गणधर एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन है। आर्यिकाओं के समाचार के अन्तर्गत एक दूसरे के अनुकूल रहने, अभिरक्षण का भाव रखने, लज्जा एवं मर्यादा का पालन करने तथा माया, रोष एवं वैर जैसे भावों से मुक्त रहने का विधान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है।

5. पंचाचाराधिकार— इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप और वीर्य— इन पंचाचारों का भेद—प्रभेदों द्वारा विस्तृत प्रतिपादन किया गया है। दर्शनाचार के अन्तर्गत जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नव पदार्थों का वर्णन है। इन नव पदार्थों में जीव तत्त्व के संसारी और मुक्त ये दो—दो भेद किये गये हैं। इन संसारी जीव के पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रस इन छह भेदों का भेदोपभेद पूर्वक विस्तृत प्रतिपादन है। रात्रिभोजन त्याग, पांच समिति, तीन गुप्ति, तप, ध्यान, स्वाध्याय आदि विषयों का विस्तृत स्वरूप कथन तथा इनका पालन करने से होने वाले लाभों का भी विवेचन है। प्रसंगवश गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्नदशपूर्वी द्वारा कथित ग्रन्थों को सूत्र कहा है। संग्रह, आराधना निर्युक्ति, मरणविभक्ति, स्तुति, प्रत्याख्यान, आवश्यक और धर्मकथा आदि जैन सूत्र ग्रन्थों तथा ऋग्वेद, सामवेद आदि वेद शास्त्रों, कौटिल्य, आसुरक्ष, महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों एवं रक्तपट, चरक, तापस, परिव्राजक आदि के नामों का उल्लेख मिलता है।

6. पिण्डशुद्धि अधिकार— इसमें तेरासी गाथाएँ हैं। श्रमणों के पिण्डैषणा (आहार) से संबंधित सभी नियमों की विशद मीमांसा की गयी है। उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजन, प्रमाण, इंगाल, धूम और कारण इन आठ दोषों से रहित आहार शुद्धि का, आहार त्याग के कारण, आहार ग्रहण के उद्देश्य, दाता के गुण, चौदह मल, आहार ग्रहण की विधि और मात्रा तथा आहार के अन्तराय आदि आहार चर्या से संबंधित सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

7. षडावश्यक—अधिकार— इस अधिकार को आवश्यकनिर्युक्ति नाम से अभिहित किया गया है तथा इसका प्रारम्भ पंच नमस्कार की निरुक्तिपूर्वक हुआ है। अर्हन्त, जिन, आचार्य, साधु, उत्तम आदि शब्दों की भी निरुक्ति पूर्वक व्याख्या की गई है। अर्हन्त, पद की निरुक्ति महत्त्वपूर्ण है। सामायिक, स्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकों का निरुक्ति एवं भेदपूर्वक विस्तृत विवेचन है। लोक, धर्म, तीर्थ, भक्ति, विनय, कृतिकर्म, अवनति, चतुर्विध आहार और आलोचना—इन सब विषयों का स्वरूप तथा भेदपूर्वक कथन, स्वाध्याय काल, वन्दनादि कायोत्सर्ग में वर्ज्य बत्तीस दोष, आसिका, निषीधिका का विधान तथा पार्श्वस्थादि पापश्रमणों आदि का विवेचन किया गया है। इस अधिकार की ये विशेषतायें हैं कि इसमें सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयम के विषय में उन मतों का उल्लेख किया गया है जिनका संबंध प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं अन्तिम तीर्थंकर महावीर तथा मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के परम्परा-भेद से है। नित्य प्रतिक्रमण और नैमित्तिक प्रतिक्रमण के संबंध में भी इसी तरह के मतों का उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8. द्वादशानुप्रेक्षाधिकार- अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्यात– इन बारह अनुप्रेक्षाओं (भावनाओं) का वैराग्यवर्द्धक सूक्ष्म विवेचन है। इसमें बताया है– राग, द्वेष, क्रोधादि आस्रव हैं, जिनमें कर्मों का आगमन होता है। ये कुमार्गों पर ले जाने वाली अति बलवान शक्तियां हैं। शांति, दया, क्षमा, वैराग्य आदि जैसे–जैसे बढ़ते हैं, जीव वैसे–वैसे मोक्ष के निकट बढ़ता जाता है। चार प्रकार के संसार का स्वरूप तथा अन्त में अनुप्रेक्षाओं की भावना से कर्मक्षय और परिणामशुद्धि का विवेचन है।

9. अनगारभावनाधिकार– इस अधिकार में अनगार का स्वरूप तथा लिंग,व्रत, वसति, विहार, भिक्षा, ज्ञान, शरीरसंस्कारत्याग, वाक्य, तप और ध्यान इन दस शुद्धियों को अनगार के सूत्र बताये हैं। अनगार तथा उनके सत्त्वगुणों, अनगार के पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया गया है। वाक्यशुद्धि के प्रसंग में स्त्री, अर्थ, भक्त, खेट, कर्वट, राज, चोर, जनपद, नगर और आकर इन कथाओं का स्वरूप तथा रूपक द्वारा प्राणि-संयम और इन्द्रियसंयम रूपी आरक्षकों द्वारा तपरूपी नगर तथा ध्यानरूपी रथ के रक्षण की बात कही गयी है। यथार्थ अनगारों का विवेचन तथा अभ्रावकाश आदि योगों का स्वरूप कथन भी किया गया है।

10 समयसाराधिकार– इस अधिकार में एक सौ चौबीस गाथाएँ हैं। इसमें वैराग्य की समयसारता, चारित्राचरण आदि का कथन करते हुए श्रमण को लौकिक व्यवहार से दूर रहने को कहा है। चारित्रसंयम और तप से रहित ज्ञानादि की निरर्थकता और प्रतिलेखन तथा इसके साधनभूत पिच्छिका की विशेषताएँ आदि इस अधिकार में प्रारम्भिक प्रतिपाद्य विषय हैं। आर्यिकाओ के आवास पर श्रमणों के गमन तथा स्वाध्याय आदि कार्य करने का निषेध किया गया है। पंचेन्द्रिय विषयों एवं काष्ठादि में चित्रित स्त्रियों तक से दूर रहने के कथन प्रसंग में ही अब्रह्म के दस कारण तथा पंचसूना आदि विविध विषयों का अच्छा विवेचन है। इसी अधिकार में आचेलक्य, औद्देशिक शय्यागृहत्याग, राजपिण्डत्याग, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण मासस्थितिकल्प एवं पर्यास्थितिकल्प - इन दस स्थितिकल्पों का नामोल्लेख है। अधिकार के अन्त में शास्त्र के सार का प्रतिपादन करते हुए चारित्र को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

11. शीलगुणाधिकार– इसमें मात्र छब्बीस गाथायें हैं। इस अधिकार में तीन योग, तीन करण, चार संज्ञा, पांच इन्द्रिय, दस काम, दस श्रमणधर्म इन्हें सबका परस्पर गुणा करने पर शील के अठारह हजार भेदों का कथन किया गया है। इसी अधिकार में गुणों अर्थात् उत्तर गुणों के भेद-प्रभेदों की चौरासी लाख संख्या का कथन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

12.पर्याप्त्यधिकार– इसमें पर्याप्ति, देह, संस्थान, कायइन्द्रिय, योनि, आयु, प्रमाण, योग, वेद, लेश्या, प्रविचार, उपपाद, उद्वर्तन, स्थान, कुल, अल्पबहुत्व और प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशबंध इत्यादि विषयक सूत्रपदों द्वारा इन विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसी अधिकार में विवेचित गति-आगति का कथन 'सारसमय' नामक ग्रन्थ में स्वयं के द्वारा कहने का उल्लेख किया है। पर यह ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। वृत्तिकार ने इसकी पहचान व्याख्याप्रज्ञप्ति से की है। जिस विषय के कथन का उल्लेख मूलाचार में है वह विषय श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध व्याख्याप्रज्ञप्ति में नहीं है। इससे लगता है कि उस समय दिगम्बर परम्परा में वट्टकेर का 'सारसमय' ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध रहा होगा। इसके प्रमाण रूप धवला टीका में भी इसका उल्लेख मिलता है। षट्खण्डागम के जीवट्ठाण नामक प्रथम खण्ड की गतिआगति नाम की नवमी चूलिका व्याख्याप्रज्ञप्ति से निकली है। इन सब उल्लेखों के अतिरिक्त गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा, स्वर्ग, नरक, मनुष्य, तिर्यंच गतियों तथा इनके जीवों आदि का विस्तृत विवेचन इस अधिकार में किया गया है। ग्रंथकार ने इस अधिकार का नाम 'पर्याप्ति संग्रहिणी' कहा है।

मूलाचार पर उपलब्ध व्याख्या साहित्य

मूलाचार श्रमणाचार विषयक एक प्राचीन एवं प्रामाणिक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। दिगम्बर परम्परा के तद्विषयक प्रायः सभी परवर्ती ग्रन्थ इससे प्रभावित अथवा इसके आधार पर लिखे गये दृष्टिगोचर होते हैं। मूलाचार पर अनेक टीकाएँ तो लिखी ही गई, साथ ही इसको मूल आधार बनाकर जिन ग्रन्थों की स्वतंत्र रचना हुई उनमें अनगार धर्मामृत, आचारसार, चारित्रसार, मूलाचार प्रदीप आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं, जिन पर मूलाचार का स्पष्ट प्रभाव है।

आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती की मूलाचार पर 'आचारवृत्ति' नामक सर्वार्थसिद्धि टीका संस्कृत भाषा में लिखी गई उपलब्ध है। आचार्य वसुनन्दि का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्राकृत ग्रन्थ वसुनन्दि श्रावकाचार सुप्रसिद्ध ही है। वस्तुतः मूलाचार विषय को हृदयंगम करने वालों में इनका अग्रणी स्थान है। इनकी आचारवृत्ति इतनी प्रसिद्ध और सरल है कि सामान्य जन भी इसका सुगमता से अध्ययन कर लेते हैं। गूढ़ विषय को स्पष्ट कर चलना और अपनी सहज एवं सरल भाषा में ग्रन्थकार के भावों को प्रकट कर देना यह वसुनन्दि की मुख्य विशेषता है।

मूलाचार के एक और व्याख्याता सकलकीर्ति हैं। इन्होंने इसके आधार पर 'मूलाचार -प्रदीप' नामक संस्कृत भाषा में विस्तृत ग्रंथ लिखा।[१] इनका समय विक्रम की १५वीं शती माना जाता है।

आचार्य सकलकीर्ति ने भी मूलाचारप्रदीप में प्रायः उन सभी विषयों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विस्तृत वर्णन किया है, जिनका प्रतिपादन आचार्य वट्टकेर ने अपने मूलाचार में किया। मूलाचार के तीसरे व्याख्याकार आचार्य मेघचन्द्र हैं। इन्होंने इस पर कर्नाटक 'मूलाचारसद्वृत्ति' की रचना की। चतुर्थ कर्नाटक टीका 'मुनिजन चिन्तामणि' नाम से मिलती है, इसमें मूलाचार को कुन्दकुन्दाचार्य की रचना बताया है। एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की 'लिस्ट ऑफ जैना एम.एस.एस.' (ग्रन्थ क्रमांक १५२१) को देखने से ज्ञात होता है कि मेधावी कवि द्वारा रचित भी एक अन्य 'मूलाचार टीका' है। वैसे १६वीं शती के मेधावी कवि द्वारा लिखित धर्मसंग्रहश्रावकाचार प्रसिद्ध ही है इन्हीं कवि का उक्त टीकाग्रन्थ भी संभव है।

उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त वीरनन्दि ने मूलाचार के आधार पर 'आचारसार' ग्रन्थ की रचना की है। पं. आशाधर ने 'अनगारधर्मामृत' नामक ग्रन्थ की रचना में इसी का आधार लिया है। पं. नन्दलाल छाबड़ा एवं पं. ऋषभदास निगोत्या विरचित भाषावचनिका भी मूलाचार की व्याख्या में महत्त्वपूर्ण योगदान रखती है।

–अध्यक्ष, जैनदर्शनविभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org